Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January 2024 5(1), 1236–1240

VARIOUS DIMENSIONS OF RAJASTHANI PAINTING

राजस्थान की चित्रकला के विविध आयाम

Salil Srivastava [1]

[1] Researcher, Department of History, Department of Humanities and Social Sciences, Lords University, Alwar, Rajasthan, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.2917

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

ABSTRACT

English: The above research paper is an attempt to explain the various styles of Rajasthani painting on historical and artistic basis. It starts from the oldest known painting from the 10th century, Odh Niryukti Vritti and Das Vakalika Sutra Churni, and passes through various regional styles of Rajasthan to the present modern painting style. It attempts to explain the various art styles of Rajasthan which originate from Mewar and how they spread to other regions like Bundi, Jaipur etc. and at what levels they display their regional variations. The above study explains its following functions in the form of explaining the relationship between the regional culture of Rajasthan and their pictorial expressions.

Hindi: उपयुक्त शोधपत्र राजस्थानी चित्रकला की विविध शैलियों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक आधार पर व्याख्या का प्रयास है। यह 10 वीं शताब्दी से अब तक ज्ञात प्राचीनतम चित्र ओध निर्युक्ति वृत्ति एवं दस वकालिका सूत्र चूर्णि से प्रारंभ होकर राजस्थान की विविध क्षेत्रीय शैलियों से गुजरता हुआ वर्तमान आधुनिक चित्रशैली तक आता है। राजस्थान की विविध कला शैलियां जो मेवाड़ से प्रारंभ होती है और कैसे उनका प्रसार अन्य क्षेत्रों जैसे बूंदी, जयपुर आदि मे होता है तथा यह किन स्तरों पर अपने क्षेत्रीय विविधताओं को प्रदर्शित करती है की व्याख्या का प्रयास करता है। उपरोक्त अध्ययन राजस्थान की क्षेत्रीय संस्कृति एवं उनके चित्रात्मक अभिव्यक्ति के बीच संबंधों की व्याख्या के रूप के अपने निम्न कार्यो को व्याख्यायित करता है।

Keywords: Painting, Rajasthan, Bundi, Mewar, Kishangarh, Folk Art, Jain Painting, चित्रकला, राजस्थान, बूंदी, मेवाड़, किशनगढ़, लोककला, जैन चित्रकला

1. प्रस्तावना

सामान्यतः राजस्थानी चित्रकला के प्रारंभिक लक्षण 7वीं शताब्दी के तिब्बती इतिहासकरों के वृत्तांतों में दृष्टिगोचर होने लगते है। परंतु इसका वास्वतिक प्रादुर्भाव 15 वीं शताब्दी में हुआ। राणा कुंभा (1433-68) के समय जो चित्र शैली 15 वीं शदी मे प्रचलित रही उसपर जैन, पश्चिमी भारत चित्र शैली, अपभ्रंश शैली का पूर्ण प्रभाव रहा। राजस्थानी चित्रकला का उद्भव अपभ्रंश शैली से गुजरात एवं मेवाड़ में काश्मीर शैली के प्रभाव द्वारा 15 वीं शती में हुआ। विशुद्ध राजस्थानी शैली का प्रारंभ 15 वीं शदी के उत्तरार्ध से 16 वीं शदी के पूर्वार्द्ध के बीच 1500 ई. के लगभग जाना चाहिए। इसने भावविधान एवं परिवेश के परिप्रेक्ष्य में नवीन होने के बावजूद विषय वस्तु के लिए अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश शैली को ही चुना। रागकला, श्रृंगार, ऋतुवर्णन, कृष्ण लीला आदि राजस्थानी चित्रों के स्रोत अपभ्रंश शैली ही है। जैन और गुजराती शैली का प्रभाव भी इस पर पड़ा है। राजस्थानी चित्रकला 17 वीं और 18 वीं शताब्दी मे अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। विभिन्न रियासतों के चित्रकारों ने स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिवेश के अनुसार अलग अलग विधाओं के चित्र बनाए। जिन्हें अपनी सुविधा के आधार पर चार मुख्य भागो में वर्गीकृत कर सकते है-

1) मेवाड़ स्कूल (चावण्ड, उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ़ आदि)
2) मारवाड़ स्कूल (जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, किशनगढ़, अजमेर, पाली, नागौर, धाणेराव आदि)
3) ढूँढ़ाड़ स्कूल (आमेर, जयुपर, शेखावाटी, अलवर, उणियारा, करौली, झिलाव आदि)
4) हाड़ौती स्कूल (बूंदी, कोटा, झालावाड़ आदि)

उपरोक्त दरबारी चित्रकला के अतिरिक्त समाज में एक लोककला का स्वरूप भी उपस्थितथा जिसके भित्ती एवं भूमिचित्र देवरा, पथवारी, मांडण आदि, कपड़े पर पिछवाई, फड़, कागज पर पाने, लकड़ी पर कावड़, पक्की मिट्टी पर मृदपात्र, खिलौने, मानव शरीर पर गुदना, मेहंदी आदि प्रयाजित थे। आधुनिक काल की राजस्थानी चित्रकला को उदयपुर के चित्रकार कुंदनलाल ने आगे बढ़ाया उसके बाद महाराज रामसिंह, नारायण मिस्त्री, जर्मन चित्रकार मूलर, भूरेसिंह शेखावत आदि बहुतेरे नामों ने इसे गति प्रदान की। ऐतिहासिक विकास के अतिरिक्त इसके कलात्मक आयामों मे जैनचित्रकला एवं कृष्ण काव्य का भी व्यापक प्रभाव परिलच्छित होता है।

2. प्रतिनिधि चित्रकलाएं

नाथद्वारा शैली (पिछवाइयां) औरंगजेब के दबाव के परिणामस्वरूप शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्रीमद् बल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथ ने उदयपुर के महाराणा से श्रीनाथजी की स्थापना की अनुमति प्राप्त कर उदयपुर से 30 मील उत्तर सिहांड़ गांव में श्रीनाथजी की स्थापना की जो वर्तमान में नाथद्वारा कहलाता है। यहाँ प्रभु श्रीनाथजी को हवेली अर्थात नंद-महालय में 10 फरवरी-1672 ई. को स्थापित किया गया।

इस काल में निर्मित अधिकतर चित्र शैलीगत दृष्टि से मेवाड़ तथा कोटा शैलियों से संबंधित हैं। इस काल के प्रमुख चित्रकारों में श्री राधाकृष्णजी का नाम महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने सर्वप्रथम श्रीनाथ जी के चित्रों में आसमानी एवं सफेद रंग मिलकार कांटी अर्थात स्वरूप के रंग की परंपरा को बदला और आसमानी के बजाय देशी नील का प्रयोग प्रारंभ किया। पुष्टिमार्ग की दूसरी महत्वपूर्ण बुनियादी धारणा यह है कि प्रभु श्रीनाथ जी अपनी सद्भावनापूर्ण कृपा दृष्टि उन सभी पर रखते हैं जो उनके चरण कमलों की शरण ले लेते है। यह बात चित्रों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

तिलकायत श्री दामोदर जी 2दक (1796 ई. से 1825 ई.) या दाऊजी भी कला के महान संरक्षक थे। इस काल में नाथद्वारा के चित्रकारों ने कोटा स्कूल की शैलीगत परिपाटी को अपने चित्रों में अपना कर परिवर्तनों को स्थान दिया। भारतेन्दु हरीशचंद्र जैसे हिंदी के महान विद्वानों ने नाथद्वारा की अपनी यात्रा (1880) के दौरान यहां के चित्रकारों को सुझाव दिया कि वे श्रीनाथजी के चैड़े तथा खुले चरणबिंदो के स्थान पर उन्हें सम्मुख तथा सीधा बनाएं।

नाथद्वारा में भगवान श्रीकृष्ण का बालस्वरूप है। यहां के प्रमुख चित्रकारों में गोपीनाथजी, श्री रामचंद्र बाबा, घासीदेव घासीराम, हरदेव शर्मा, पं. खुबीराम शर्मा, औकारलाल, चंपालाल व मास्टर कुंदनलाल है। महिला चित्रकारों में सपरादेवी, जामनीदेवी, कमलादेवी, इलायचीदेवी, प्रख्यात चित्रकार घासीराम की पुत्री कानुदेवी ने भी सुंदर अंकन किए है। नाथद्वारा शैली पर लोक प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है, इसलिए इस शैली को विद्वानों ने लोक शैली तों माना, किंतु यह शैली अपने आप में अपने आरंभिक काल मे भले लोक शैली को अपनाकार मेवाड़ की उपशैली के रूप में जानी जाती रही हो, पर बाद के काल मे यह एक स्वतंत्र शैली के रूप मे स्थापित हुई है। नाथद्वारा शैली पर मेवाड़ शैली का प्रभाव रहा, किंतु धीरे-धीरे उसकी लाक्षणिकता से यह शैली दूर होती चली गयी तथा अपना पृथक पहचान बना ली। नाथद्वारा के कलाकारों ने विभिन्न अन्य शैलीयों के उपादान ग्रहण किए तथा सिंदूरी व नीले रंग की पृष्ठभूमि में राधाकृष्ण केमनोहारी स्वरूप को अंकित किया तथा अपनी स्वतंत्र अस्मिता को कला जगत मे स्थापित किया।

3. किशनगढ़ शैली

जोधपुर राज्य के राठौड़ राज्य वंश के राजा उदयसिंह के 8वें पुत्र किशनसिंह ने किशनगढ़ की स्थापना की थी, यह राज्य अजमेर और जयपुर नगरों के बीच है। यहां के चित्रों में नागरीदास की रसिकता एवं भावुकता से संपन्न और 'बणीठणी', की प्रेरणा, राधाकृष्ण का प्रेम, उत्सव परंपरा का महत्व, आँखों का महत्व, अधरों एवं नाखूनों की साज-सज्जा एवं तांबुल सेवन, प्रकृति चित्रण, कमल चित्रण आदि महत्वपूर्ण तत्व है। इस कला को उत्कर्ष तक पहुँचाने का कार्य राजा सावंतसिंह (1699-1764) ने किया। ये अपने कवि एवं रसिक स्वभाव के कारण नागरीदास के रूप में प्रसिद्ध हुए। सन् 1723 से 1731 तक के समय में विहार चन्द्रिका, रसिक रत्नावली एवं मनोरथ मंजरी आदि कृष्ण काव्यों की रचना की। इस शैली के चित्रकारो में अमीरचन्द्र, धन्ना, भंवरलाल, छोटू, सूरध्वज तथा मोरध्वज निहालचंद के नाम विशेषकर उल्लेखनीय है। ऐसी किंवदन्तियां है कि बणी-ठणीनागरीदास की प्रेयिसी थी। जिनका उनकी रचनाओं में प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

इस चित्रशैली पर जोधपुर और कांगड़ा शैली का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। कांगड़ा शैली साहित्यिक आधार के रूप में इस शैली को प्रभावित करती है तो प्रकृति चित्रण के लिहाज से बूंदी की लधुचित्र शैली किशनगढ़ के चित्रों के प्रभाव क्षेत्र मे रही है।

4. शेखावाटी की चित्रकला

(सीकर, झुंझुंनू और जयपुर) राजस्थान का उत्तर पूर्वी भूखण्ड शेखावाटी क्षेत्र, इस सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखे है। इस परिक्षेत्र में मारवाड़ के उत्तरी पूर्वी भाग नवलगढ़ लक्ष्मणगढ़, फतेहपुर, बिसाउ, रामगढ़, चुरू आदि क्षेत्रो के भित्ती चित्रों मे प्रचलित रहा हैं। 15 वीं शब्तादी के कच्छवाहावंशी, बालाजी के पौत्र और मोकलजी के पुत्र शेखाजी ने इस क्षेत्र को 'शेखावाटी' के रूप में प्रसिद्धि दिलाई। शेखवाटी की हवेलियों व राजप्रासादों में चित्रित भित्ति चित्रों की अभिव्यक्ति में 18 वीं शताब्दी के पाश्चात्य प्रभावों के अनुरूप यहां के सेठों की व्यापारिक समृद्धि को अपने भवनों में चित्रांकन के रूप के विकसित किया। 19 वीं शदी के पूर्वार्द्ध में येश्रेष्ठिजन मुंबई व कलकत्ता चले गए। उनमें पिलानी के बिड़ला, नवलगढ़ के पोद्दार, मुकुन्दगढ़ के

कानोडियों, बग्गड़ के बाँगड़, फतेहपुर के गोइनका, रामगढ़ के रूइया, डालकियां, बजाज व जपुरिया आदि। वास्तु शास्त्र के आधार पर निर्मित इन भव्य भवनों, हवेलियों, मंदिरों बावड़ियों व छतरियों में आकर्षक भिति चित्रों का चित्रण नवलगढ़, लक्ष्मणगढ़, मुकन्दगढ़, चुरू, सरदारशहर, फतेहपुर, झुंझुंनू, चिड़ावा, खण्डेला, डूंडलोद, मण्डावा, बिसाऊ, भदवासर, बग्गड़, तथा रामगढ़ सेवण आदि स्थलों में होता रहा। शेखावाटी के भित्ती चित्र प्रायः 19 वीं सदी के बदलते परिवेश की अभिव्यक्ति है। जैसे- रेल, मोटर, हवाईजहाज, सिलाई की मशीन, साईकिल, बग्घी, ग्रामोफोन, बैण्डबाजा, कुर्सियां, सोफासेट आदि का अंकन। 16 वीं शदी में कायमखानी नवाबों ने अपने दो राज्य फतेहपुर एवं झुंझुंनू स्थापित किए। यहां भवन निर्माण एवं उन्हें चित्रो से सजाने का कार्य करने वाली जाति को चेतारा कहते थें। जो जैन मथेरणों से मिलती, जुलती है। महत्वपूर्ण चितेरों में बालूराम चेतारा, छाजू, उस्ता फतेहपुर, शेख जादूई, सूरजमल (1710), डूण्डलोद, रामनारायण, जयदेव, दसाराम तथा तनसुख चितेरा प्रमुख है। शेखावाटी भित्ती चित्रण पद्धति अनेक प्रकार की थी- प्रथम पत्थर पर, दूसरागीले स्तर पर, तीसरे प्रकार के चित्र सूखेस्तर पर बनाए जाते थे।

5. शेखावाटी भिती चित्रण के विविध केंद्रः-किले

सीकर का किला(18 वीं सदी), नवलगढ़ का किला, डूंडलोद का किला, मंडावा का किला, झुंझुंनूू का किला, खेंतड़ी का महल, सूरजगढ़ का किला, महणसर का किला

मंदिर-18 वीं सदी, 19 वीं सदी, 20 वीं सदी।

18 वीं सदी- गोपीनाथ का मंदिर-सीकर जिले के राजा शिवनाथ सिंह ने बनाया था।

झूंझूंनू का गोपीनाथ मंदिर- सार्दुल सिंह शेखावत ने बनावाया था।

19 वीं सदी के मंदिर-मसलसिर के गोपीनाथ जी के मंदिर - 1840 रामगढ़ के रघुनाथ जी मंदिर

20 वीं सदी के मंदिर-डूंडलोद का सत्यनारायणजी का मंदिर-हरीराम गोयनका मुंकुंदगढ़ का शिवमंदिर

छत्रियां

1) उदयपुरवाटी के जोगिदास
2) परशुरामपुरा के शार्दुल सिंह शेखावत-पेमा चित्रकार- 1750

हवेलियां-शेखावाटी- तीन भाग

1) परशुरामपुरा
2) ग्राम जीवन से युक्त
3) शेखावाटी की विशिष्ट शैली।

6. बूंदी की चित्रकला

बूंदी की चित्रकला तीन आयामो पर आधरित है प्रथम यहां की भौगोलिक स्थिति, द्वितीय राजाश्रय और तृतीय बल्लभ संप्रदाय की धार्मिक प्रवृत्ति। बल्लभ संप्रदाय के प्रभाव से कृष्ण लीला की श्रृंगारिक भावनाओं और वात्सल्य रस को अनेक रूपों में जोड़ा गया। बूंदी की यह कला राजस्थान के दक्षिण पश्चिम क्षेत्र मेंकोटा से बीस मील दूर विकसित हुई। यहां पर अन्य प्रांतो की भांति मुगल चित्रों की नकल नहीं की गई है वरन मौलिक रचना शैली का आश्रय लिया गया है। यहां के चित्रों में नायिका भेद को बड़ी कुशलता से दिखाया गया है और प्रत्येक पक्ष को स्पष्ट करके दिखाया गया है। कृष्णराधा की प्रेम लीला के आधार पर ही नायिका भेद के चित्र बनते है, और साहित्यिक दृष्टिकोण से वे सरस हो जाते है। यहां के चित्रों में चमकीले रंगों का प्रयोग, शिकार, सवारी, उत्सव और वे सामाजिक दृश्य भी अंकित मिलते है जो तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का परियच देते है। बूंदी के चित्र चित्रकारों की वो भावनाएं है जो लम्बे कथानको को चित्रित करने में बड़ा कौशल दिखलाती हैं। मधुमालती, सरवलिंग्डा, रुदाव्रत, गीत गोविंद तथा केशव की कविताएं इसके प्रिय विषय है। इसके अतिरिक्ति राजसी वैभव भी इनकी कृतियों में देखने को मिलता है। जैसे-दर्पण देखती सुंदरी, चकरी से क्रीड़ा करती किशोरी, पुष्प चयन करती युवती तथा राजा रानियों की विलास क्रीड़ा का चित्रण प्रधान रहा है।

7. राजस्थानी जैन चित्रशैली

जैन चित्रों का आरंभ गुजरात में जैन समाज की धार्मिक परंपराओ और मान्यताओं के अनुकूल रहा। यही परंपरा राजस्थान में भी प्रचलित थी और सैकड़ौ की संख्या में जो जैन गंथ यहां लिखे गए उन्हें यहां के कलाकारों द्वारा चित्रित किया गया है। इन चित्र को श्री रामकृष्णदास ने अपभ्रंश शैली नाम दिया है। कुछ कला विशेषज्ञ इसे राजस्थानी परंपरा ही मानते है, कुछ इसे गुर्जर शैली कहते है। जैन लघु चित्रों की यह परंपरा अन्य शैलियों से एक पृथक अस्तित्व रखती है। इन चित्रों का नरव शिरव, रंग विधान रेखा साष्ठव न तो राजस्थानी शैली में है और न अन्य किसी निकटवर्ती शैली में। इसकी निकटता अजंता एवं पालकालीन लेखों में मिलती है। जैन चित्र गुर्जर जाति के नख शिखों की एक सूची प्रस्तुत करते है। राजस्थानी लघुचित्र शैली का आरंभ इन्ही जैन चित्रों की परंपरा से होता है जो पंद्रहवी शती के अंत तक एक पृथक रूप धारण कर चुके थे। जैन चित्र शैली के कलाकारों का एक समुदाय आज भी राजस्थान के उदयपुर बीकानेर जोधपुर आदि नगरो में निवास करता हैं इन्हें 'गुरू या गुरू जी' के नाम से संबंधोति किया जाता है। बीकानेर के थेरण या मथेर भी चित्र लिखने का ही व्यवसाय करते रहे है। इनके वंशज आज भी विद्यमान है। नागौर, जालोर, जोधपुर, बीकानेर, बवरेड़ा, उदयपुर,जाजम,जीनापुर, जैसलमैर, पाली और कुचामन आदि राजस्थान के वे स्थान है जहां जैन चित्रों का आलेख हुआ है। जती समुदाय में जैन पुस्तकों का अटूट भण्डार सुरक्षित है इनमें सचित्र जैन गं्रथ भी है।

8. राजस्थानी लोक कला

राजस्थानी चित्रकला के प्रमुखतः दो स्वरूप मिलते है- एक लोक कलात्मक और दरबारी। राजस्थानी लोक चित्रकला की एक समृद्धशाली परंपरा रही है जिसके मुख्य अंश निम्न है-

1) भित्ती एवं भूमि चित्र
   क- आकारद चित्र-भित्ती, देवरा, पथवारी आदि पर।
   ख- अमूर्त, सांकेतिक, ज्यामितीय, सांझी, मांडणा आदि।
2) कपड़े पर निर्मित चित्र पट-चित्र, पिछवाई, फड़ आदि।
3) कागज पर निर्मित चित्र- पाने
4) लकड़ी पर निर्मित चित्र- कावड़, खिलौने।
5) पक्की मिट्टी पर निर्मित चित्र- मृदपात्र, लोकदेवता, देवियां, खिलौने।
6) मानव शरीर पर चित्र- गुदना, मेंहदी।

9. आकारद चित्र

राजस्थान में भित्ती चित्रण की परंपरा आदि काल से रही है। भरतपुर के दर तथा कोटा के अलणियां और चंबल के शैलाश्रयों के रेखांकनों में आदिमगंध मिलती है जो आज भी आदिवासियों में प्रचलित है। राजस्थान के गाँव में पथवारी प्रायः आमतौर पर बनायी जाती है। ये पथ की रक्षक कही जाती है। तीर्थ यात्रा पर जाते समय पथवारी की पूजा की जाती है। कई बार मृतक व्यक्तिके फूल यथोचित स्थान पर न छोड़े जाने के कारण यही छोड़ दिए जाते थे। पथवारी में एक ओर गोरा काला भेरू जी तथा दूसरी ओर कावड़िया वीर(श्रवण कुमार) बने है। देवरा खुले चबूतरे पर बना एक त्रिकोणात्मक आकार का होता है जो कि अधिकतर सड़क के किनारे सूर्य के प्रकाश में रहता था।

अमूर्त, सांकेतिक अलंकरण

यह कुंवारी लड़कियों द्वारा सफेदी से पुती दीवारों पर गोबर से उकेरी गई आकृति थी जिनका उनके द्वारा पूजन किया जाता था इसी प्रकार मांडणा भी घर के विभिन्न स्थानों पर बनाकर पूजित किए जाते थे। होली व दीपावली पर इनका विशेष महत्व रहता है।

कपड़े पर निर्मित चित्र

इस कला में राजस्थान के उतर पूर्वी भाग के उदयपुर राज्य के भीलवाड़ा व शाहपुरा कस्बों के छीपा जाति के जोशी/ज्योतिषी चित्रकार आज भी सलंग्न है। इसे राजस्थानी में 'फड' कहते है। यह भोपों के लिए बनाई जाती है। श्रीलाल जोशी जो कि भीलवाड़ा के निवासी है इस चित्रकला के प्रमुख चित्रकार है।

कागज पर चित्र

इसमे पाने सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें विभिन्न देवी देवताओं के चित्रों को कागज पर उकेरा जाता है जो मेलों में बेचे जाते है। इनमें श्रीनाथ जी का पाना विशेष प्रसिद्ध है।

लकड़ी पर निर्मित चित्र

विभिन्न जातियों जैसे खाती, खेराड़ी सुथार आदि जातियों द्वारा राजस्थान में लकड़ी का काम किया जाता है। इसमें मोर चैपड़ा (श्रृंगारदान), चाॅकी (बाजोट), गणगौर बिडोला, विमान, कावड़ (मंदिरनुमा आकार) बनाए जाते है। इन सब में कावड़ सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसमें विभिन्न कपाट होते है जब वे सभी खुल जाते है तो राम लक्ष्मण व सीता की मूर्तियां दर्शित होती है।

10. निष्कर्ष

राजस्थान की चित्रकला अपने ऐतिहासिक स्वरूप में 10 वीं शती तक जाती है किंतु इसकी पराकाष्ठ का काल 15 वीं व 16 वीं शताब्दी में होता है। इस कला के विविध आयाम हैं जैसे धार्मिक जिसमें राधाकृष्ण की भक्ति एवं विभिन्न वैष्णव धर्मसंप्रदाय जैसे बल्लभ संप्रदाय की शुद्धौद्वतवादी तत्व का पर्याप्त समावेश दिखायी देता है। राजस्थान की लगभग हर प्रमुख चित्रकला शाखाओं में यह तत्व हमें परिपक्व अवस्था में देखने को मिलता है चाहे वह नाथद्वारा की पिछवाई कला हो या किशनगढ़ की चित्रकला। अन्य धार्मिक आयामों की यदि हम चर्चा करे तो जैन धर्म की चित्रकला का भी अपना महत्व है। यह अपने विशिष्ट धार्मिक स्वरूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। सामाजिक क्षेत्र में देखने पर हमे ज्ञात होता है कि विभिन्न लोककलाएं चाहे वह फड़ हो या मथरेण, मांडणा हो या कोई और वो आम जनमानस से जुड़ी हई कला है जिसे सामान्य जन अपने धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में संजोकर रखे है। आधुनिक काल में भी जयपुर महाराज सवाई रामसिंह ने जयपुर मे राजस्थान स्कूल ऑफ आर्टस एवं क्राफ्टस की स्थापना की इसे स्थानीय भाषा में हुनरी मदरसा भी कहते थे। ये प्रयास राजस्थान की चित्रकला की निरंतरता को प्रदर्शित करते है। कई लोक कलाकार एवं परिवार जैसे जोशी परिवार जो फड़ चित्रकला को नए शिखर तक पहुँचा रहा है के प्रयास सराहनीय है जिन्होने राजस्थान की चित्रकला को विश्व मानचित्र पर अपना स्थान लेने मे सहयोग किया है। अगर हम चुनौतियाँ को देखे तो पारंपरिक तकनीकों की घटती उपयोगिता और वर्तमान युवा पीढ़ी की घटती रूचि को देखा जा सकता है। यदि हम इन कलाओ के व्यवसायिक उपयोग को प्रोत्साहन दे सके तो निश्चित ही राजस्थान की चित्रकला अपने नए आयामों को छू सकेगी और विश्व पटल स्तर पर अपना नाम अंकित करवा सकेगी।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Cultural Tradition of Rajasthan- Dr. Jaisingh Neeraj, Dr. Bhagwati Lal Sharma Rajasthan Hindi Granth Academy, Jaipur, Pages 86.89, 96.101

Premchand Goswami- Miniature Painting Styles of Rajasthan- First Volume- Rajasthan Lalit Kala Academy, Jaipur, Pages - 22-40, 51-59

Dr. R. K. Vashisht- Aakruti (Shekhawati Wall Painting Special Issue) Rajasthan Lalit Kala Academy- Jaipur, Pages 6-10, 18-21, 36-41

Narmada Prasad Upadhyay Laxminarayan Tiwari- Focused on Pichwai, Nathdwara Painting Style- Braj Sanskriti Shodh Sansthan, Vrindavan Mathura, Pages-9-12, 27-29

Dr. (Mrs.) Rajesh Jain- Jainism in Medieval Rajasthan- Parshvanath Vidyashram Shodh Sansthan, Varanasi- Pages- 281-291